संगीत रत्नावली (संगीतशास्त्र विज्ञान)

Sangeet Ratnawali (Sangeet Sastra Vigyan)

भूमिका

- इस ग्रंथ की रचना देवगिरी यानी दौलताबाद के राजगायक एवं विद्वान पंडित शारंगदेव द्वारा सन 1210 से 1247 के बीच के समय अर्थात् 13 वीं शताब्दी में की गई। (ऐसा माना जाता है कि पंडित शारंगदेव ने 1230 सन में इस ग्रंथ की रचना की)। यह ग्रंथ भारतीय संगीत का आधारभूत ग्रंथ माना जाता है। भारतीय संगीत के उत्तरी और दक्षिणी दोनों पक्ष इसे आधारभूत ग्रंथ मानते हैं। इस ग्रंथ के समय के बारे में कोई मतभेद नहीं है क्योंकि पंडित शारंगदेव ने खुद ही इस ग्रंथ में अपना परिचय दे दिया है कि यह तथा इनके पूर्वज कश्मीर के निवासी हैं। उनके वंश के मूल(आदि) पुरुष श्री वृषगण थे। जिनकी परंपरा में श्री भास्कर पंडित हुए जो राजनीतिक उथल-पुथल के कारण कश्मीर से दक्षिण में जाकर बस गए। श्री भास्कर पंडित के सुपुत्र श्री सोढल पंडित हुए और श्री सोढल पंडित के वह(शारंगदेव) सुपुत्र हैं।

- श्री सोढल पंडित देवगिरी के राजा सिंघन यादव के दरबार में थे। या फिर इस तरह कहा जा सकता है कि श्री सोढल के आश्रयदाता राजा सिंघन यादव (सिंघन देव) थे जोकि देवगिरी के शासक थे और जिसकी राजधानी दौलताबाद थी। राजा सिंघन का राज्यकाल 1210 से 1247 ईस्वी था। इसलिए इस ग्रंथ की रचना और इसके रचयिता का भी यही समय समझना उचित है।

संगीत रत्नाकर का वर्ण्य विषय

- संगीत रत्नाकर 7 अध्यायों में विभाजित किया गया है जिनमें गायन, वादन तथा नृत्य तीनों से संबंधित पारिभाषिक शब्दों तथा अन्य बातों पर प्रकाश डाला गया है। वे 7 अध्याय जिनमें संगीत कला के सातों पक्षों का पूर्ण रूप से वर्णन किया गया है इस प्रकार हैं-

1. स्वराध्याय
2. रागविवेकाध्याय
3. प्रकीर्णकाध्याय
4. प्रबन्धाध्याय
5. तालाध्याय
6. वाद्याध्याय
7. नर्तनाध्याय

- **1. स्वराध्याय**
- संगीत रत्नाकर के प्रथम अध्याय स्वराध्याय में राग की परिभाषा, राग की उत्पत्ति और उसके भेद(आहत और अनाहत), नाद स्थान आदि का विस्तृत वर्णन मिलता है। इसमें श्रुति, स्वर, जाति, कुल, देवता, ऋषि, छंद, रस, ग्राम, मूर्छना, तान, स्वर साधारण और जाति साधारण वर्ण, अलंकार, जाति गायन और गीतियों संबंधी पूर्ण व्याख्या की गई है। इस अध्याय में सारणा चतुष्टई का भी वर्णन मिलता है। सारणा चतुष्टई प्रयोग के अंतर्गत भरत ने स्वर वीणा और पंडित शारंगदेव ने श्रुति वीणा पर प्रयोग किया। इसलिए भरत ने 7 तार और पंडित शारंगदेव ने 21 तार बांधे थे। मूर्छना के अंतर्गत उन्होंने सभी तारों को षड़ज ग्राम में खिसका दिया और प्रत्येक मूर्छना को षड़ज ग्राम से प्रारंभ किया जिससे उन्हें विकृत स्वरों की परख हुई। उनके समय तक केवल दो ही विकृत स्वर माने जाते थे। उनके स्वरों की विशेषता यह थी कि कोई भी स्वर अपने स्थान से हट जाने पर विकृत तो होता ही था। अपने स्थान पर रहते हुये भी (श्रुत्यांतर) बदल जाने पर भी विकृत हो जाता था। इस ग्रंथ में पंडित शारंगदेव ने 7 शुद्ध और 12 विकृत स्वरों का परिचय तथा शुद्धा, भिंन्ना, गौरी, बेसरा (वेगस्वरा) तथा साधारणी आदि गीतियों(गायन शैलियों) के लक्षणों का भी वर्णन किया है।

2.रागाध्याय

- दूसरे अध्याय अर्थात रागाध्याय में ऊपर दी गई पांच प्रकार की गीतियों के अंतर्गत 30 ग्राम राग तथा उनके विभागों के बारे में वर्णन दिया गया है। इसके साथ-साथ उपराग तथा राग के भाषा विभाषा, अंतर्भाषा तथा जनक रागों के लक्षण दिए हैं तथा देशी रागों के चार भागों के बारे में बताया गया जिनके रागांग, भाषांग, क्रियांग तथा उपांग आते हैं। इस अध्याय में देशी रागों के नाम, प्रसिद्ध ग्राम रागों आदि का परिचय दिया है। इनके अंतर्गत कुछ पूर्व प्रसिद्ध तथा कुछ आधुनिक प्रसिद्ध राग भी बताए हैं।
- इस अध्याय के अंतर्गत पंडित शारंगदेव ने 264 रागों का वर्णन किया है। उन्होंने सभी रागों को 10 भागों में बांटा है उनके नाम हैं

1 ग्राम राग जिनकी संख्या 30 है

2. राग की 20

3. उपराग की 8

4.रागांग की 8

5 भाषांग की 21

6. क्रियांग की 12

7. उत्तरांग की 3

8. भाषा की 96

9. विभाषा की 20

10. अन्तर और भाषा रागों की संख्या 4 मानी है।

इस वर्गीकरण का आधार अस्पष्ट होने के कारण उनके अर्थ के विषय में कई मत-मतांतर हैं परंतु इस वर्गीकरण से यह स्पष्ट होता है कि उस समय भरत की जातियां अप्रचलित हो गई थी।

3 प्रकीर्णाध्याय

- तीसरे अध्याय अर्थात् प्रकीर्णाध्याय में वाग्गेयकार के 28 लक्षणों(गुणों) का विवेचन, गीत के गुण-दोष, गायकी के लक्षण, गायक के गुण-दोष, शब्द के गुण-दोष, गमक, स्थान, आलप्ति, रागालप्ति, और कुतुप आदि का विवेचनात्मक अध्ययन किया गया है

4.प्रबंधाध्याय

- चौथे अध्याय अर्थात प्रबंधाध्याय में पंडित शारंगदेव ने प्रबंध विषय पर विचार किया है। इसमें प्रबंधों के 75 प्रकार, जाति तथा पंचविध रूपक के दर्शन करवाए गए हैं। इनके अतिरिक्त देशी संगीत, मार्गी संगीत, गांधर्व गान और उसके निबंद्धानिबद्ध आदि भेद, धातु, रागालाप, रूपकालाप, आलप्तिगान, स्वरस्थान, नियम का आलाप, अल्पत्व-बहुत्व आदि भी इस अध्याय में प्रकाश डाला गया है।

5. तालाध्याय

- पंचम अध्याय अर्थात तालाध्याय में पंडित शारंगदेव ने मार्ग, ताल, गीत तथा देसी ताल प्रकरण के अंतर्गत 121 तालों का परिचय दिया है।

6.वाद्याध्याय

- छठें अध्याय अर्थात वाद्याध्याय में समस्त वाद्यों का विवरण दिया गया है जिन्हें चार भागों में बांटा गया है- तत, वितत्त, सुविर, अवनद्धय, तथा घन वाद्यों का परिचय उनकी वादन विधि तथा उनके और वादकों के गुण-दोष आदि का वर्णन किया गया है।

7.नर्तनाध्याय

- सातवें अर्थात अंतिम अध्याय नर्तनाध्याय में नाट्य नृत्य की व्याख्या तथा शरीर के विभिन्न अंगों द्वारा किए जानेवाले अभिनय पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है।
- इस प्रकार यह 7 अध्यायों में गीत, वाद्य और नर्तन आदि त्रिवेणी पर प्रकाश डालने वाला अनुपम ग्रंथ सचमुच की अद्वितीय ग्रंथ का रूप धारे हुए हैं।

संगीत रत्नाकर की टीकाएं

- इस ग्रंथ की अनेक टीकाएं हुई जिसमें से सिंहभूपाल और कल्लीनाथ द्वारा की गई टीकाएं महत्वपूर्ण थी।

भरत का अनुसरण

- भरत का **नाट्यशास्त्र** और मतंग का **बृहदेशी** संगीत रत्नाकर के आधार हैं लेकिन यह भी स्पष्ट रूप से जाना गया है कि पंडित शारंगदेव के समय में भरत कालीन जाति गायन समाप्त हो चुका था तथा भरत के देसी रागों के स्थान पर नए राग आ गए थे जिन्हें पंडित शारंगदेव ने **अधुना प्रसिद्ध** राग कहा है। पंडित शारंगदेव अपने अधुना प्रसिद्ध रागों का संबंध प्राचीन काल से जोड़ने का यत्न तो किया परंतु वह अधिक स्पष्ट ना हो सका क्योंकि प्राचीन काल में तो रागों और जातियों का ही प्रचार रहा। इसलिए संगीतज्ञों के लिए यह ग्रंथ कुछ मुश्किल सा हो गया।

संगीत रत्नाकर की अस्पष्टता

1. जिस प्रकार भरत ने स्वरों और श्रूतियों की सिद्धि के लिए संवाद तत्व के आधार पर स्पष्टीकरण किया है उस प्रकार का कोई स्पष्टीकरण संगीत रत्नाकर में स्वरों की व्याख्या में नहीं मिलता।
2. नाट्यशास्त्र की भांति शारंगदेव ने श्रुतियों की सिद्धि और स्वर-स्थापना के लिए संवाद सिद्धांत का आधार नहीं लिया है जिससे इनकी सिद्धि में संशय होना स्वाभाविक ही है।
3. सारणा चतुष्टई की व्याख्या में दोनों वीणाओं पर 22-22 तार मिले हुए हैं। इस दशा में अचल-वीणा चल वीणा के लिए मापदंड कैसे बन सकती है? भरत ने स्वरों का माप निश्चित करते समय अचल-वीणा से संबंध-सिद्धांत का जो तरीका बनाया है वह संगीत रत्नाकर में दिखाई नहीं देता।
4. सारणा क्रिया में अनुमान के आधार पर पहले ही सभी 22 श्रुतियां मिला ली गई हैं इस दशा में उन्हें फिर से सिद्ध करने का प्रश्न ही नहीं उठता।
5. मंद्रतम ध्वनि, निरंतरता के आधार पर जिस तरह सभी 22 श्रुतियों को मिला लेने को कहा गया है उससे कुछ विद्वानों को यह भ्रम होता है कि पंडित शारंगदेव की सूचियों का नाप एक जैसा ही था।
6. सारणा क्रिया में प्रथम तार को मंद्रतम ध्वनि से मिला लेने को कहा गया है किंतु चौथी सारणा में सा का तार कहां स्थापित होगा इसको स्पष्ट नहीं किया गया है।
7. इस प्रकार जब प्रारंभ में श्रुति स्थापना में ही अस्पष्टता होगी तब उसके बाद स्वर और राग भी अस्पष्ट ही होंगे।

संगीत रत्नाकर के संबंध में भातखंडे जी तथा पंडित ओंकार नाथ जी के विचार

- संगीतांजलि के लेखक विद्वान डॉ. ओंमकारनाथ ठाकुर इसके संबंध में अपने विचार प्रकट करते हुए कहते हैं कि शारंगदेव का संगीत रत्नाकर सर्वांगीण और विस्तृत विषय प्रतिपादन की दृष्टि से सचमुच भारतीय संगीत का आधार ग्रंथ है जैसा कि इस प्रकरण के अंत में दी गई इसकी विषय सूची से स्पष्ट होगा। इसके काल निर्णय में कोई कठिनाई नहीं होती
- पंडित विष्णु नारायण भातखंडे ने इस ग्रंथ के बारे में कहा है कि निस्संदेह रत्नाकर हमारे संगीत की ऐतिहासिक श्रृंखला में एक महत्वपूर्ण कड़ी है, इसलिए हमने इस पर इतना गहरा प्रकाश डाला है। यह ऐतिहासिक प्रकाश अवश्य ही सारंगदेव और उनकी कृति रत्नाकर पर पड़े हुए आवरण को हटा सकेगा (भारतीय संगीत का इतिहास से)
- रत्नाकर के संबंध में भातखंडे जी का कहना है मैं समझता हूं कि अब यह निश्चित सा है कि संगीत रत्नाकर तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में लिखा गया। यद्यपि आज यह ग्रंथ हमारे प्रमाणिक ग्रंथों में से प्रथम और प्रमुख माना जाता है फिर भी यह ध्यान रखना चाहिए कि देश के किसी भी भाग में इसका संगीत स्पष्ट रूप से समझा नहीं जाता। निस्संदेह यह बातें विरोधी दिखाई देती हैं लेकिन यह सत्य है कि भरत के वर्तमान काल में जो विद्वान हैं उनमें से एक भी रत्नाकर में बताएं रागों को विस्तृत रूप से समझाने में समर्थन ना हो सके। यहां पर ध्यान में रखना होगा कि भातखंडे जी की मृत्यु 1936 में हो गई थी और उसके बाद भारतीय संगीत शास्त्र में बहुत परिवर्तन हो चुका है।

वास्तविकता

- संगीत रत्नाकर में संगीत विषय के तत्कालीन (उस समय के) समय सभी प्रमुख विचारों का एकत्रीकरण है और संगीत जैसी परिवर्तनशील कला इसलिए इस संगीत ग्रंथ के विचारों से अलग दिखाई दी। अपनी उपयोगिता के कारण विद्वान इस ग्रंथ से प्रभावित हुए बिना ना रह सके किंतु इसके विचार ग्रहण करने में भी संकोच से काम लिया। महाराजा कुंभा और रघुनाथ भूप ने रत्नाकर की आलोचना भी की है और उसका अनुकरण भी किया है। यह बातें रत्नाकर के प्रभाव को बताती हैं।
- पंडित शारंगदेव की शैली क्लिष्ट और गंभीर है। इसलिए जनसाधारण के लिए सरल नहीं। रत्नाकर की सात टीकाओं का उल्लेख मिलता है, किंतु अब केवल काल्लिनाथ और सिंहभूपाल की टीका अधिक विद्वतापूर्ण और विशिष्ट है।

ग्रंथ की मौलिकता

- इतना होते हुए भी संगीत रत्नाकर एक मौलिक संगीत ग्रंथ है। मूर्च्छानाओं की मध्य सप्तक में स्थापना, विकृत स्वरों की प्राप्ति, मध्यमग्राम का लोप, प्रति माध्यम की उत्पत्ति, तीव्र मध्यम की उत्पत्ति, रत्नाकर की मौलिकता प्रकट करते हैं। या फिर यह कहना अधिक उचित होगा कि यद्यपि इस ग्रंथ ने भरत का अनुसरण किया है, फिर भी उसकी मौलिकता और प्रतिभा मूर्च्छानाओं की स्थापना, मध्यम सप्तक का लोप, अनेक विकृत स्वरों की प्राप्ति में झलकती है।